353 -

चैत वसंता होइ धमारी ....
नारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिनु ....

भावार्थ - चैत में वसन्त की बहार होती है। पर मेरे लेखे संसार उजाड़ है। कोयल अपने पंचम राग में विरह के कारण पिउ पिउ रटती हुई काम के पंच बाण मारती है। और रक्त के आँसू रोकर सारे वन में गिराती है। उन आँसुओं में डूबकर वृक्षों के नये पत्ते ताम्रवर्ण हो गए हैं। मंजीठ भी उनसे भीज गया है और वन का टेसू उनसे लाल हो गया है बौरे हुए आम फलने लगे हैं। हे सभागे कंत, अब भी मेरा स्मरण कर घर आओ। वनस्पति सहस्त्रों रूपों में फूली है। भौरें मालती का स्मरण कर लौट आए हैं। मुझे फूल काँटे जैसे लग रहे हैं। उनके देखते ही मेरे शरीर में चोटें लग जाते हैं। इस नारंग वृक्ष की शाखा में यौवन भर गया है। विरह रूपी सुग्गा उन्हे खाना चाहता है अब रक्षा नहीं हो सकती। गिरहबाज कबूतर जैसे आता है ~~वैसी~~ वैसे ही हे प्रिय तुम भी आकर ढरो। यह स्त्री पराए वश में है। तुम्हारे बिना उससे न छूट पाएगी।

352-

फागुन पवन झँकोरै बहा ....
मकु तेहि मारग होइ परौ कंत धरै जहँ पाउ ....

भावार्थ - फागुन में हवा झकझोरती हुई बहती है। शीत चौगुना हो जाता है कैसे सहा जाय? मेरा शरीर पीले पत्ते जैसा हो गया है. विरह में यह पत्ता भी न टिक पायगा, क्योंकि विरह पवन बनकर उसे झोर डालेगा। वृक्षों के पत्ते झड़ रहे हैं, और वन ढाके भी झड़ रहे हैं। फूल फल वाली शाखाएँ पत्तों से रहित हो गई हैं। अब कलियों द्वारा वनस्पति हुलसित होने लगी है। पर मेरे लिए संसार दूना उदास हो गया है। सब चाँचर जोड़कर फाग मना रहे हैं। मेरे जी में जैसे किसी ने होली की आग लगा दी है। यदि प्रिय को इस तरह जलना अच्छा लगता है, तो मुझे जलने मरने में भी कुछ रोष नहीं है। रात दिन मेरे मन में यही है कि हे कंत तेरे थाल जैसे हृदय से लग जाऊँ। इस शरीर को जलाकर राख कर दूँ और कहूँ - हे वायु इसे उड़ा ले जा शायद मैं उस मार्ग में जा पड़ूँ जहाँ प्रियतम कभी पाँव रक्खे।